वैदिक ऋषि, देवता, छन्द और विनियोग

(पं० श्रीयोगीन्द्रजी झा, वेद-व्याकरणाचार्य)

वेदका अध्ययन ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके अर्थ-ज्ञानके साथ करना चाहिये। ऋष्यादिज्ञानके बिना वेदाध्ययनादि कर्म करनेसे शौनककी अनुक्रमणीमें दोष लिखा है—

'एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामम्भवत्यथान्तराश्वगर्तं वा पद्यते स्थाणुं वर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान् भवति' (अनुक्रमणी १।१)। 'जो मनुष्य ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको जाने बिना वेदका अध्ययन, अध्यापन, जप, हवन, यजन, याजन आदि करते हैं, उनका वेदाध्ययन निष्फल तथा दोषयुक्त होता है और वे मनुष्य अश्वगर्त नामक नरकमें पड़ते हैं अथवा मरनेपर शुष्क वृक्ष होते हैं (स्थावरयोनिमें जाते हैं) अथवा कदाचित् यदि मनुष्ययोनिमें भी उत्पन्न होते हैं तो अल्पायु होकर थोड़े ही दिनोंमें मर जाते हैं अथवा पापात्मा होते हैं।' जो मनुष्य ऋष्यादिको जानकर वेदाध्ययनादि करते हैं, वे फलभाक् होते हैं—

'अथ विज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित् तस्य वीर्यवत्तरम्भवति जपित्वा हुत्वेष्ट्वा तत्फलेन युज्यते' (अनुक्रमणी १।१)। 'जो मनुष्य ऋष्यादिको जानकर वेदाध्ययनादि करते हैं, उनका वेद बलवान् (अर्थात् फलप्रद) होता है। जो ऋष्यादिके साथ वेदका अर्थ भी जानते हैं, उनका वेद अतिशय फलप्रद होता है। वे मनुष्य जप, हवन, यजन आदि कर्म करके उनके फलसे युक्त होते हैं।' याज्ञवल्क्य, व्यास आदिने भी ऋष्यादिकी आवश्यकता, अपनी-अपनी स्मृतियोंमें बतलायी है। याज्ञवल्क्य कहते हैं—

'आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च।
वेदितव्यः प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः॥
अविदित्वा तु यः कुर्याद्याजनाध्यापने जपम्।
होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलम्भवेत्॥'

'मन्त्रोंके ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग आदि ब्राह्मणको अवश्य जानना चाहिये। जो ब्राह्मण ऋष्यादिको बिना जाने याजन, अध्यापन, जप, होम आदि करते हैं, उनके कर्मोंका फल अल्प होता है।' व्यासने लिखा है—

अविदित्वा ऋषिश्छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेद् याजयेद् वा पापीयाञ्जायते तु सः॥

'जो ब्राह्मण ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको बिना जाने याजन तथा अध्यापन करते हैं वे अतिशय पापी होते हैं।'

पाणिनीय व्याकरणके अनुसार गतिका अर्थ ज्ञान मानकर गत्यर्थक **'ऋष्'** धातुसे **'इगुपधात्कित्'** (उणादि ४।५६९) सूत्रसे **'इन्'** प्रत्यय करनेपर ऋषि शब्द बनता है। मन्त्रोंके द्रष्टा अथवा स्मर्ता ऋषि कहलाते हैं। अतएव सर्वानुक्रम-सूत्रमें महर्षि कात्यायनने लिखा है— **'द्रष्टार ऋषयः स्मर्तारः।'** औपमन्यवाचार्यने भी निरुक्तमें इसी प्रकार **'ऋषि'** शब्दका निर्वचन बतलाया है—

'होत्रमृषिर्निषीदन्नृषिर्दर्शनात्। स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवः। तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।' (निरुक्त २।११)। 'मन्त्र-समूहको देखनेवाले अर्थात् साक्षात्कार करनेवाले ऋषि कहलाते हैं। हिरण्यगर्भादिने सृष्टिके आदिमें आविर्भूत होकर पूर्वकल्पमें अनुभूत वेदपदार्थोंको कठिन तपश्चर्यासे संस्कार, सम्मान तथा स्मरणके द्वारा 'सुप्तप्रबुद्धन्याय' से पूर्ववत् प्राप्त किया; अतः वे वेदमन्त्रोंके ऋषि कहलाये। आज भी स्मरणार्थ वे मन्त्रोंके आदिमें दिये जाते हैं। श्रुतियोंमें भी ऋषि शब्दका (मन्त्रद्रष्टा) अर्थ प्रतिपादित है—**'तत एतम्परमेष्ठी प्रजापत्यो यज्ञमपश्यद्यद्दर्शपौर्णमासाविति।'** 'तब दर्श-पौर्णमास यज्ञगत द्रव्य, देवता, मन्त्रादिको परमेष्ठीने देखा।' **'दध्यङ् ह वा आथर्वण एतं शुक्रमेतं यज्ञं विदाञ्चकार'** यहाँसे लेकर **'न तदुहाश्विनोरनुश्रुतमास'** यहाँतकके इतिहाससे मालूम होता है कि प्रवर्ग्य-यागगत मन्त्रोंके दध्यङाथर्वण ऋषि हैं। याज्ञवल्क्यने भी ऋषि शब्दका अर्थ मन्त्रद्रष्टा ही माना है—

'येन य ऋषिणा दृष्टो मन्त्रः सिद्धिश्च तेन वै।
मन्त्रेण तस्य सम्प्रोक्त ऋषिभावस्तदात्मकः॥'

'जो मन्त्र जिस ऋषिसे देखा गया, उस ऋषिका स्मरणपूर्वक यज्ञादिमें मन्त्रका प्रयोग करनेसे फलकी प्राप्ति होती है।' मन्त्रादिमें ऋषि-ज्ञान आवश्यक है, यह विषय श्रुतिमें भी प्रतिपादित है—

'प्रजापतिः प्रथमां चितिमपश्यत् प्रजापतिरेव तस्या आर्षेयम्। देवा द्वितीयां चितिमपश्यन् देवा एव तस्या आर्षेयम्। इन्द्राग्नी विश्वकर्मा च तृतीयां चितिमपश्यंस्त एव तस्या आर्षेयम्। ऋषयश्चतुर्थीं चितिमपश्यन्नृषय एव तस्या आर्षेयम्।

परमेष्ठी पञ्चमीं चितिमपश्यत् परमेष्ठ्येव तस्या आर्षेयम्।'

अर्थात् 'अग्निचयन-यागमें पाँच चितियाँ होती हैं; उनमें प्रजापतिने प्रथम चितिको देखा, इसलिये वे प्रथम चितिके ऋषि हुए। देवगणने द्वितीय चितिको देखा; इसलिये वे द्वितीय चितिके ऋषि हुए। इन्द्राग्नी तथा विश्वकर्माने तृतीय चितिको देखा, इसलिये वे तृतीय चितिके ऋषि हुए। ऋषिगणने चतुर्थ चितिको देखा, इसलिये वे चतुर्थ चितिके ऋषि हुए। परमेष्ठीने पञ्चम चितिको देखा, इसलिये वे पञ्चम चितिके ऋषि हुए।' यह विषय शतपथब्राह्मणमें प्रतिपादित है। इसके बाद वहाँ ही लिखा है—'**स यो हैतदेवं चितीनामार्षेयं वेद**' इत्यादि। 'जो इस प्रकार पाँचों चितियोंके ऋषियोंको जानते हैं, वे पूत होकर स्वर्गादिको प्राप्त करते हैं।'

अब 'देवता' पदका निर्वचन दिखलाया जाता है। पाणिनीय व्याकरणके अनुसार क्रीडाद्यर्थक '**दिव्**' धातुसे '**हलश्च**' सूत्रसे '**घञ्**' प्रत्यय करके देव शब्द बनता है। उससे '**बहुलं छन्दसि**' इस वैदिक प्रकरणके सूत्रसे स्वार्थमें '**तल्**' प्रत्यय करके तथा '**टाप्**' करके देवता शब्द बनता है। निरुक्तकार यास्कने भी दानार्थक '**दा**' धातुसे या '**द्युत्**' धातुसे अथवा '**दीप्**' धातुसे '**व**' प्रत्यय करके वर्णका विकार तथा लोप करके '**देव**' शब्द बनाया है—'**देवो दानाद् द्योतनाद् दीपनाद्वा।**' देव और देवताका अर्थ एक ही है; क्योंकि स्वार्थमें '**तल्**' प्रत्यय किया गया है। जो तीनों लोकोंमें भ्रमण करें, प्रकाशित हों अथवा वृष्ट्यादिद्वारा भक्ष्य-भोज्यादि चतुर्विध पदार्थ मनुष्योंको दें, उनका नाम देवता है। वेदमें ऐसे देवता तीन ही माने गये हैं—

'**तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः, वायुर्वेन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः, सूर्यो द्युस्थानः। तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति।**' (निरुक्त० ७। २। ५) अर्थात् 'पृथिवीस्थानीय अग्नि, (२) अन्तरिक्षस्थानीय वायु या इन्द्र और (३) द्यु-स्थानीय सूर्य—ये तीन देवता वेदमें माने गये हैं। उन्हींकी अनेक नामसे स्तुतियाँ की गयी हैं। सारार्थ यह है कि मन्त्रके प्रतिपादनीय विषयको देवता कहते हैं। '**अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः।**' इस मन्त्रमें अग्नि देवता हैं। '**इषे त्वा**' इस मन्त्रमें शाखाएँ देवता हैं। यहाँ पूर्वपक्ष है—'**महाभाग्यत्वात्**' अग्नि देवता हो सकते हैं, परंतु शाखाएँ तो स्थावर पदार्थ हैं, वे कैसे देवता हो सकती हैं?' उत्तर सुनिये—'वेदमें रूढि देवता नहीं लिया जाता है, किंतु जिसको जिस मन्त्रमें हविके विषयमें कहा जाता है या जिसकी स्तुति की जाती है, वह पदार्थ उस मन्त्रका देवता होता है। इस प्रकारसे शाखादि अचेतन पदार्थको भी देवत्व प्राप्त हुआ। निरुक्तकारने भी ऐसा ही कहा है—'**अपि ह्यदेवता देवतावत् स्तूयन्ते, यथाश्वप्रभृतीन्यौषधिपर्यन्तानि।**' (निरुक्त० ७। १। ४) 'कहीं अदेवता भी देवताकी तरह स्तुत होते हैं; जैसे अश्व आदि, औषधिपर्यन्त वस्तुएँ।' जो पूर्वपक्षीने कहा है कि स्थावर होनेके कारण शाखादिको देवत्व कैसे प्राप्त हुआ, वहाँ यह उत्तर है कि '**अभिमानिव्यपदेशस्तु**' इस वैयासिक सूत्रसे तथा '**मृदब्रवीत्**', '**आपोऽब्रुवन्**' इत्यादि श्रुतियोंसे यहाँ शाखाद्यभिमानी देवता लिया जाता है। प्रतिमाभूत शाखादि पदार्थ फलका साधन करता है।*

आह्लादार्थक चौरादिक '**चदि**' धातुसे '**चन्देरादेश्च छः**' (३। ४। ६६८) सूत्रसे '**असुन्**' प्रत्यय करके तथा चकारको छकारादेश करके छन्दः शब्द बनता है। अर्थ है—'**छन्दयति आह्लादयति चन्द्यतेऽनेन वा छन्दः**', 'जो मनुष्योंको प्रसन्न करे, उसका नाम छन्द है' अथवा छादनार्थक चौरादिक '**छद्**' धातुसे '**असुन्**' प्रत्यय करके '**पृषोदरादित्वात्**' नुमागम करके छन्दः पद बनता है। '**छादयति मन्त्रप्रतिपाद्ययज्ञादीनीतिच्छन्दः।**' जो यज्ञादिकी असुरादिकोंके उपद्रवसे रक्षा करे, उसे छन्द कहते हैं। निरुक्तकार यास्कने भी छन्द शब्दका ऐसा ही अर्थ बतलाया है—'**मन्त्रा मननात्। छन्दांसि छादनात् (स्तोमःस्तवनात्)। यजुर्यजतेरित्यादि।**' (निरुक्त० ७। ३। १२) 'मनन करनेसे त्राण करनेवाले शब्दसमूहको मन्त्र कहते हैं। जिससे यज्ञादि छादित हों (रक्षित हों), उसे छन्द कहते हैं, (जिससे देवताकी स्तुति की जाय, उसे स्तोम कहते हैं)। जिससे यज्ञ किया जाय, उसे यजुः कहते हैं।'

* ऋग्वेद, प्रथम अष्टकके ३४वें सूक्तके ११वें मन्त्रमें और इसी अष्टकके ४५वें सूक्तके दूसरे मन्त्रमें ३३ देवोंका उल्लेख है। ऐतरेयब्राह्मण (२। २८) और शतपथब्राह्मण (४। ५। ७। २)-में भी ३३ देवोंकी कथा है। तैत्तिरीयसंहिता (१। ४। १०। १)-में स्पष्ट उल्लेख है कि आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्षमें ११-११ देवता रहते हैं।—सम्पादक

श्रुतिमें भी छन्दका यही अर्थ प्रतिपादित है—**दक्षिणतोऽसुरान् रक्षांसि त्वाष्ट्रान्यपहन्ति त्रिष्टुब्जिर्वज्रो वै त्रिष्टुप्**' इत्यादि। 'यज्ञमें कुण्डकी दक्षिण परिधिको त्रिष्टुप्-स्वरूप माना है और त्रिष्टुप् वज्रस्वरूप है; अतः उससे असुरोंका नाश होता है।' मन्त्रोंका छन्दोज्ञान कात्यायनादिप्रणीत सर्वानुक्रम, पिङ्गल-सूत्रादि ग्रन्थोंसे करना चाहिये—

'छन्दांसि गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यतिजगती शक्कर्यतिशक्कर्यष्ट्यत्यष्टिधृत्यतिधृतयःकृतिप्रकृत्याकृतिविकृति-संकृत्यभिकृत्युत्कृतयश्चतुर्विंशत्यक्षरादीनि चतुरुत्तराण्यूनाधिके-नैकेन निचृद्भूरिजौ द्वाभ्यां विराट् स्वराजावित्यादि।' (अनु० अ०१। १) '२४ अक्षरोंका गायत्री, २८ का उष्णिक्, ३२ का अनुष्टुप्, ३६ का बृहती, ४० का पंक्ति, ४४ का त्रिष्टुप्, ४८ का जगती, ५२ का अतिजगती, ५६ का शक्वरी, ६० का अतिशक्वरी, ६४ का अष्टि, ६८ का अत्यष्टि, ७२ का धृति, ७६ का अतिधृति, ८० का कृति, ८४ का प्रकृति, ८८ का आकृति, ९२ का विकृति, ९६ का संकृति, १०० का अभिकृति और १०४ अक्षरोंका उत्कृति छन्द होता है। इस प्रकार २४ अक्षरसे लेकर १०४ अक्षरतक गायत्री आदि २१ छन्द होते हैं। इनमें प्रत्येकमें एक अक्षर कम होनेसे '**निचृत्**' विशेषण लगता है और एक अक्षर अधिक होनेसे '**भूरिज्**' विशेषण लगता है। दो अक्षर कम होनेसे '**विराट्**' विशेषण लगता है और दो अक्षर अधिक होनेसे '**स्वराट्**' विशेषण लगता है। इस प्रकार उन पूर्वोक्त छन्दोंके अनेक भेद सर्वानुक्रमसूत्र, पिङ्गलसूत्रादिमें वर्णित हैं। विशेष जिज्ञासु वहाँ देख लें। लेख विस्तारके भयसे यहाँ उन सबका विवरण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।

जिस कामके लिये मन्त्रोंका प्रयोग किया जाता है, उसे विनियोग कहते हैं। इसके विषयमें याज्ञवल्क्यने कहा है—

पुराकल्पे समुत्पन्ना मन्त्राः कर्मार्थमेव च।
अनेनेदं तु कर्तव्यं विनियोगः स उच्यते॥

प्रत्येक मन्त्रका विनियोग तथा ऋष्यादि भी तत्-तत् वेदके ब्राह्मण तथा कल्पसूत्रसे जानना चाहिये। विनियोग सबसे अधिक प्रयोजक है। मन्त्रमें अर्थान्तर अथवा विषयान्तर होनेपर भी विनियोगद्वारा उसका किसी अन्य कार्यमें विनियोग करना, कर्मपारवश्यसे पूर्वाचार्योंने माना है अर्थात् विनियोगके सामने शब्दार्थका कुछ आधिपत्य नहीं है। इसलिये मन्त्रोंमें मुख्य विनियोग है, जो कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके द्वारा समय-समयपर विनियुक्त हुआ था।

वेद कथाङ्क (कल्याण-गीताप्रेस)